आयुर्वेद एवं पर्यावरण संरक्षण

चिकित्सा का सम्बन्ध यद्यपि आयुर्वेद से अधिक है, लेकिन अन्य वेदों में भी इस विषय के मंत्र मिलते हैं। ऋग्वेद में आपःजल औषधियों आदि का उल्लेख मिलता है। औषधियों में वनस्पतियों का पृथक्–पृथक् रूप में वर्णन मिलता है। इनमें वनस्पतियों का मिश्रण नहीं मिलता है। अतः कहा जा सकता है कि आयुर्वेद का प्रारम्भिक ज्ञान ऋग्वेद में प्रारम्भ हो गया था। ऋग्वेद में ऋतास्व को अश्विनी का आँख प्रदान करना, च्यवन ऋषि का पुनः युवा होना आदि कथनों के साथ वैद्य के लक्षणों की भी विस्तृत चर्चा है।

यजुर्वेद में भी औषधियों के लिए कई मंत्र मिलते हैं। इन मंत्रों की व्याख्या से स्पष्ट होता है कि औषधियों का उपयोग यज्ञ, कर्म तथा स्वास्थ्य के लिए विशेष तौर पर होता था। यही नहीं, उसमें औषधियों से अनेक प्रकार की प्रार्थनाओं का भी उल्लेख आता है। यजुर्वेद के ऋषि ने औषधियों को माता की प्रतिकृति कहने के साथ ही '**सर्वेषां रुग्णानां निष्कर्षे**' यानि कि सब रोगों को निकालने वाली कहकर प्रार्थना की है।

अथर्ववेद में आयुर्वेद का विषय विशेष विस्तार से विवेचित किया गया है। सच तो यह है कि अथर्ववेद का सम्बन्ध ही आयुर्वेद उपांग से है। इसमें वनस्पतियों का स्पष्ट नामोल्लेख, कृमि सम्बन्धी जानकारी, शल्य चिकित्सा एवं प्रसूति विज्ञान आदि विषय मिलते हैं। अथर्ववेद का सम्बन्ध मनुष्य जीवन के साथ क्रियात्मक रूप से होने से आयुर्वेद का सम्बन्ध इसी से विशेष है। इसमें वनस्पतियों का उपयोग अलग–अलग स्वतंत्र रूप में ही मिलता है। उन दिनों इनको मिश्रित रूप में नहीं बरता जाता था। यही नहीं, भिन्न–भिन्न अंगों में होने वाले रोगों के नाम भी स्पष्ट रूप में मिलते हैं।

वैदिक उल्लेख के अनुसार औषधियाँ प्राणसृष्टि से पहले उत्पन्न हुई। उपनिषदों में भी आयुर्वेद के विचारों की छाया दिखती है। चरक की परिपाटी में साफ तौर पर उपनिषदों का प्रभाव है। चरक संहिता में रोग और पुरुष की

उत्पत्ति का निर्णय करने में जितने मत या वाद बताए गए हैं वे सब उपनिषदों में मिलते हैं। इन सभी का प्रचलन बुद्ध के समय तक भी रहा। ये वाद (सम्प्रदाय) लगभग 62 थे। जैन ग्रन्थों में इनकी संख्या 363 है। वैद्यक शास्त्र में स्वभाव, ईश्वर, काल, इचछा, नियति और परिणाम इनको स्थूल रूप में कारण मानते हैं। यही वाद चरक संहिता में स्पष्ट रूप से भिन्न–भिन्न ऋषियों के मुख से सुनने में आता है। इन्हीं सब वादों का समावेश श्वेताश्वतर उपनिषदों में किया गया है।

रामायण में भी आयुर्वेद सम्बन्धी उद्धरण मिलते हैं। वाल्मीकि रामायण के युद्धकाण्ड में हनुमानजी द्वारा औषधि पर्वत लाने का उल्लेख है। इस लायी गयी औषधि को सुषेण वैद्य ने लक्ष्मण एवं वानरों को दी थी। वैद्य शब्द संभवतः रामायण में सबसे पहले आया है। इस समय शल्य चिकित्सा एवं औषधि चिकित्सा पर्याप्त उन्नति पर थी। आयुर्वेद में उन दिनों आठ अंग शलय, शलक्य, विषगर विरोधिक, कौमारभृत्य, भूत विद्या, रसायन, बाजीकरण एंव काय चिकित्सा के रूप में प्रचलित थे। महाभारत के लोकपाल समाधान प्रकरण में नारद युधिष्ठिर संवाद से स्पष्ट पता चलता है कि उस समय तक ये आठों अंग पूर्णतया विकसित हो चुके थे। गीता के विभूतियोग भगवान श्रीकृष्ण ने गन्धर्वों में अपने को चित्ररथ का उल्लेख वैभ्राज नाम से किया। चित्ररथ वन का उल्लेख चरक संहिता में आत्रिपुत्र ने किया है, जहाँ पर ऋषियों ने एक साथ बैठकर रस विवेचन किया था।

पाणिनी व्याकरण में भी आयुर्वेद साहित्य का परिचय मिलता है। जातक में उल्लेख मिलता है– अनेक चरणों में घूम–घूम कर ज्ञान प्राप्त करने वाला छात्र चरक कहलाता था।

वेद, उपनिषदों एवं बौद्ध धार्मिक ग्रन्थों की तरह स्मृतियों में भी आयुर्वेद की गौरवपूर्ण परम्परा का उललेख मिलता है। मनुस्मृति में उद्भिजों का भेद, औषधि, वनस्पति, वृक्ष एवं वल्ली के रूप में किया गया है। मनुस्मृति में गृहस्थाश्रम के लिए आचार वर्णित है तथा उससे मिलता–जुलता वर्णन आयुर्वद की वृहत्त्रयी संहिता में आता है। विष्णुस्मृति के अध्याय 60, 61, 63 और 64 में दी हुई स्वास्थ्य सम्बन्धी सूचनाएँ 'अष्टांग संग्रह' में दिए गए विवरण से मेल खाती हैं। याज्ञवल्क्य स्मृति में आयुर्वेद विषय तथा चरक संहिता में बतायी गयी अस्थितगणता तीन सौ साठ कही गयी है। नारदीय स्मृति में भी शल्य चिकित्सा का उदाहरण सन्निहित है। बोधायन स्मृति, जो काफी बाद की मानी जाती है, इसमें चक्रचर का एक अन्य भेद भी बताया है, जो कि उपनिषद के चरक संज्ञा वाले ऋषियों की ओर संकेत करता है।

आयुर्वेद किसी पुस्तक का नाम नहीं है। आयुर्वेद हम भारतवासियों का संस्कार है। वात–पित्त–कफ की धारणा हमारे मानस में पीढ़ियों से चली आ रही है। आयुर्वेद की बातें हमारे लोक–जीवन में गहरी पैठी हुई हैं जैसे स्वस्थ जीवन के लिए निम्न दस पंक्तियों में शिक्षा दी गई है–

सावन हर्रे भादों चीत,
क्वार गुड़ खायउ मीत,
कार्तिक मूली, अगहन तेल,
पूस में करै दूध से मेल,
माघ मास घिउ खिचड़ी खाय,
फागुन उठी के प्रातः नहाय,
चैत मास के नीम बेसहती,
वैसाखे में खाय जड़हथी,
जेठ मास जो दिन में सोवे
ओकर जर आसाढ़ में रोवै।

आयुर्वेद आहार के बारे में कहता है–

हिताहारोपयोग एक एव पुरुषस्यामिवृद्धि करो भवति।
अहितारोपयोगः पुनर्व्याधीनां निमित्तमिति।।

(चरक सूत्र 25.31)

अर्थात् लाभकारी भोजन का प्रयोग ही मनुष्य के लिए हितकर होता है और हानिकारक भोजन के प्रयोग से रोग उत्पन्न होते हैं।

भोजनान्ते पिबेत तक्रम निशान्ते च वारि।
वासरान्ते पिबेत पयः त्रिभिः रोगो न जायते।।

अर्थात् भोजन के पश्चात् तक्र (छाछ) पीने से, रात के पश्चात् यानि भोर में जल पीने से तथा दिन के पश्चात् अर्थात् रात को दूध पीने से कभी व्याधि नहीं आती।

स्वास्थ्य रक्षा के साथ–साथ इसमें व्याधि उपचारात्मक विधियां भी बहुत तर्कसम्मत हैं। वैसे तो उपचार पांच प्रकार के होते हैं शमन, शोधन, सत्वाजयास, पंचकर्म व रसायन। लेकिन हम यहां गहराई में न जाकर सामान्य बात ही करेंगे। रोग–विशेष के निदान के पश्चात् उसके उपचार में चार मूलभूत बातें होती हैं : औषध, अनुपान, पथ्य व अपथ्य, अर्थात् व्याधि को चारों ओर से घेर लेने की प्रक्रिया। औषध जो लेनी है, अनुपान जिसके साथ लेनी है, पथ्य जो करना है, अपथ्य जो नहीं करना है। इस प्रकार जो स्वास्थ्यलाभ होता है, वह स्थाई होता है, बिना किसी अन्य दुष्प्रभाव के। आयुर्वेद एक सम्पूर्ण विज्ञान है 'जीवन विज्ञान'।

आयुर्वेद न केवल स्वस्थ रहने का ही शास्त्र है, न केवल रोगों की चिकित्सा का ही शास्त्र है अपितु इसमें स्वस्थ व्यक्तियों के लिए भी शरीर में ओज, ऊर्जा, बुद्धिमता, यौवन, रोगप्रतिरोधक्षमता तथा कान्ति बढाने की बात भी है– रसायन चिकित्सा उपचार में बहुत से शक्तिवर्धक, मेध्य, व्यवस्थापक, कांतिवर्धक शास्त्रोक्त योग व औषधियां समाविष्ट हैं। लोग विधि–विधान से इनका सेवन कर लाभान्वित होते हैं। महर्षि च्यवन ऋषि का च्यवनप्राश तो इसका लोक–प्रचलित उदाहरण है।

आयुर्वेद वनौषधियों, गौमूत्र, दुग्ध, घी, मक्खन इत्यादि पर आधारित है, जो मनुष्य को 'पर्यावरण संरक्षण' की प्रेरणा देता है।

❑❑